(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २)　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　एक अङ्क ≡

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,　　　　सं० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७　　　　मथुरा, १ जून सन् १९४६ ई०　　　　अंक ६

वास्तविक शिक्षा क्या है ?

"मैंने भूगोल सीखा, बीजगणित का स्वाद लिया भूमिति का ज्ञान प्राप्त किया, भूगर्भ विद्या भी घटी, किन्तु इन सबका परिणाम ? मैंने इनसे क्या तो अपना भला किया और क्या अपने आपस वालो का ? मैंने यह सारा ज्ञान क्यों लिया ? मुझे इससे क्या फायदा हुआ ? एक अंग्रेज विद्वान् (हक्सले) ने शिक्षा के सम्बन्ध में कहा है :

"वास्तविक शिक्षा उस मनुष्य ने पाई है जिसका शरीर उसके काबू में रहता है और वह शरीर सौंपे हुए काम को आराम और आसानी से पूरा करता है। सच्ची शिक्षा उसे मिली कहनी चाहिये कि जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त है और न्याय परायण है; उस मनुष्य ने सच्ची शिक्षा ली है जिसका मन प्राकृतिक नियमों से पूर्ण है और इन्द्रियाँ उसके वश में हैं। जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, जो बुरे आचरण को धिक्कारता है और सबको अपने समान मानता है। ऐसा मनुष्य सही रूपमें शिक्षित माना जायगा।"

जो सच्ची शिक्षा की यह परिभाषा हो तो मुझे क़सम खाकर कहना चाहिये कि ऊपर मैंने जिन शास्त्रों का उल्लेख किया है वे अपने शरीर या अपनी इन्द्रियों को वश में मेरे किसी काम नहीं आये।"

—महात्मा गान्धी।

सद् ज्ञान साधना के दो कर्मठ पुजारी :—

श्री बाबु भाईजी अहमदाबाद

श्री राजनारायणजी श्रीवास्तव, कानपुर।

इन दोनों सत्य के पारखी महानुभावों ने अपना अपना अमूल्य समय देकर लगभग एक-एक सौ अखण्ड-ज्योति के ग्राहक पूर्ण निस्वार्थ भाव से बनाये हैं। धर्म प्रचार की यह लगन, सेवा और साधना सर्वथा सराहनीय है।

मथुरा १ जून सन् १९४६ ई०

इस शिक्षा से क्या लाभ ?

इस युग को शिक्षा और सभ्यता का युग कहा जाता है। चारों ओर शिक्षा और सभ्यता की धूम है। शिक्षित और सभ्य बनने तथा बनाने के लिए नाना विधि आयोजन हो रहे हैं। बालक जैसे ही ५-६ वर्ष के होते हैं वैसे ही उन्हें शिक्षित बनाने के लिए स्कूल में भेज दिया जाता है। बालक पढ़ना आरम्भ करता है और पन्द्रह बीस वर्ष (अपने जीवन का लगभग एक तिहाई भाग) स्कूल कालिजों में व्यतीत करता हुआ शिक्षित बनकर निकलता है। उसके पास एम. ए, बी. ए. आदि की डिग्रियां होती हैं, जिन माता पिता ने उन्हें पेट काट कर शिक्षा का अत्यन्त भारी खर्च उठाया वे आशा करते हैं कि इतनी बड़ी साधना के बाद हमारा लड़का बहुत ही सुयोग्य बनकर निकलेगा। उसकी शिक्षा अपने शुभ परिणामों से आनन्दमय, वातावरण की सृष्टि करेगी।

परन्तु शिक्षा समाप्त करके निकले हुए छात्र की वास्तविक दशा देखकर अभिभावकों की आंखों तले अँधेरा छा जाता है। लड़के का स्वास्थ्य चौपट नजर आता है। हड्डियों का ढांचा एक पीले चमड़े के खोल में लिपटा होता है। ऐनक नाक पर रखे बिना उनकी आंखें काम नहीं करतीं। पिचका हुआ चहरा, रोती सी सूरत, बैठी हुई आंखें यह बताती हैं कि शिक्षा के अनावश्यक भार ने इनके स्वास्थ्य को चबा डाला। रहा बचा जीवन, रस कुसंग की शर्मनाक भूलों में बह गया। शारीरिक दृष्टि से वे इतने अशक्त होते हैं कि भारी परिश्रम के काम उनकी क्षमता से बाहर हो जाते हैं।

सभ्यता के नाम पर फैशन और उच्छृंखलता दो ही बातें वे सीख पाते हैं। बालों के सजाव शृङ्गार में वेश्यायें उनकी होड़ नहीं करतीं। अनावश्यक, असुविधाजनक, बेढङ्गी, खर्चीली योरोपीय फैशन की, नये नये तर्ज की पोशाकें पहनने में वे बहुत आगे बढ़े चढ़े रहते हैं। बड़ों के प्रति आदर भाव का दर्शन नहीं होता। यही इनकी सभ्यता है जीवन यापन के लिये क्लर्की करने के अतिरिक्त और कोई चारा इनके पास नहीं होता। जीवन भर पराई ताबेदारी करके पेट पालने के अतिरिक्त और साधन उनके पास नहीं होता। स्वर्गीय कविवर अकबर की उक्ति उनके विषय में पूरी तरह चरितार्थ होती है।

गुजर उनका हुआ कब,
कब आलमे अल्लाह अकबर में।
कालिज के चक्कर में,
मरे साहब के दफ्तर में।।'

जीविकोपार्जन की दिशा में वे सर्वथा लुंज पुंज, दूसरों की दया पर निर्भर होते हैं। जब किसी नौकरी के लिए कोई छोटा मोटा स्थान खाली होने की सरकारी विज्ञप्ति अखबारों में निकलती है तो एक २ जगह के लिए हजारों दरख्वास्तें पहुंचती हैं।

जिन्हें सरकारी नौकरी मिल जाती हैं वे समझते हैं कि इन्द्र का इन्द्रासन मिल गया। यदि वहां बुरी में बुरी परिस्थिति में रहना पड़े, दिन रात अपमानित होना पड़े. एवं आत्म हनन करके अनुचित काम भी करना पड़े तो भी इसे छोड़ने का साहस नहीं कर पाते, क्योंकि वे जानते हैं कि जितने पैसे यहां मिलते हैं अपनी हीन योग्यता और हीन अनुभव के आधार पर उतना भी कमाना उनके लिये कठिन है।

लार्ड मेकाले की निश्चित योजना के अनुसार वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा पद्धति केवल इंग्लैंड के लिए ही उपयोगी है। विदेशी शासन यंत्र ढोने के लिए सस्ते बैल उन्हें सुविधा पूर्वक मिलते रहने के लिए यह फैक्टरी उनके बहुत काम की है। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से विचार करने पर वर्तमान शिक्षा पद्धति व्यर्थ ही नहीं हानिकर भी है। इसमें छात्र की व्यक्तिगत योग्यताऐं विकसित होने के लिये गुंजायश नहीं है। अनुपयोगी, अनावश्यक जीवन में कुछ काम न आने वाली बातें रटते रटते लड़कों का दिमाग़ चट जाता है, स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, जीवन का सबसे कीमती भाग नष्ट हो जाता है। बदले में एक सनद का काग़ज मिलता है जिसे दिखाकर किसी किसी को कहीं "मोस्ट ओबिडियेन्ट सर्वेन्ट" कहाने का सौभाग्य प्रदान करने वाली नौकरी मिल जाती है। जिन्हें वह भी नहीं मिलती वे फटे हाल बाबू इधर से उधर जूतियां चटकाते फिरते हैं और उस सनदकी निरर्थकता पर भारी पश्चात्ताप प्रकट करते हैं।

हाथ से काम करना अपमान जनक अनुभव होता है। बाबूजी के लिए अपना सूट केस लेकर आध मील चलना अपमानजनक है। घर के काम काज करते हुये, परिश्रम पड़ने वाले कामों में हाथ डालते हुये उन्हें ऐसी लज्जा लगती है मानों कोई भयंकर पापकर रहे हों। ऐसी दशा में कोई स्वतन्त्र कारोबार उनके द्वारा होना भला किस प्रकार सम्भव है। बिना पढ़े तांगे वाले, खोमचे वाले, कुली, गाड़ी वाले, मजूर आदि उससे कहीं अधिक कमा लेते हैं जितना कि बाबू लोगों को तनुख्वाह मिलती है। स्वस्थता एवं दीर्घ जीवन का उपयोग भी इन शिक्षितों की अपेक्षा वे अशिक्षित अधिक करते हैं।

लड़कियां भी इस शिक्षा प्रणाली के दोषों से अधिक बच नहीं पातीं। पढ़ लिखकर जहाँ उन्हें गृहलक्ष्मी बनना चाहिये वहां वे फैशन परस्त तितलियाँ बन जाती है। हाथ से काम करने में वे अपनी हेटी समझती हैं। उच्छृंखलता, तुनकमिजाजी, अवज्ञा एवं विलासिता के कुसंस्कार उन्हें भी सफल गृहस्थ जीवन के सुसंचालन में अयोग्य बना देते हैं। योरोप में भी दुखदायी वातावरण वहां के गृहस्थ जीवनों को नरक बनाये हुए है उसकी छाया किन्हीं अंशों में इस शिक्षा पद्धति द्वारा भारतीय गृहस्थों में भी जा पहुंचती है।

माता पिता अपने बालकों को इसलिये पढ़ाते हैं कि पढ़लिखकर अधिक सुयोग्य बनें। परन्तु जिस शिक्षा के द्वारा सुयोग्यताओं का लोप होकर अयोग्यताऐं उपलब्ध होती हैं। उसके लिए अभिभावकों का पैसा और बालकों का समय बर्बाद होने से क्या लाभ? अब तक 'कोई अच्छी सरकारी नौकरी" मिलने की एक आशा प्रधान रूप से रहती थी पर अब तो उसका भी मार्ग बन्द हो चला है। क्योंकि एक तो इंग्रेजी शिक्षा का प्रचलन इतना अधिक होगया है कि उनमें से एक प्रतिशत को भी सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल सकतीं, दूसरे सेना से लौटे हुए व्यक्तियों को उन नौकरियों में प्रथमस्थान मिलेगा। इसके अतिरिक्त भारत, स्वशासन प्राप्त करने की दिशा में बड़ी तेजी से बढ रहा है। जैसे जैसे इस दिशा में प्रगति होगी वैसे ही वैसे विदेशी भाषा जानने वालोंको जो महत्व

अब प्राप्त है वह घटेगा। इन सब कारणों से सरकारी नौकरी के लिए पढ़ने वालों का मार्ग क्रमशः अधिक कंटकीकीर्ण होता जायगा।

इन सब बातों पर विचार करते हुए अभिभावकों को यह विचारना होगा कि अपने बालकों को क्या पढावें ? अब ऐसी शिक्षा पद्धति अपनाने की आवश्यकता है जिसके द्वारा बालक अपनी शारीरिक मानसिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और आत्मिक उन्नति कर सकें। समर्थ स्वावलम्बी और व्यवहार कुशल और पुरुषार्थी बन सकें। ऐसी शिक्षा ही सच्ची शिक्षा कहला सकने की अधिकारिणी है।

एक अनुभवी शिक्षा शास्त्री का मत है कि—"शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि वह मनुष्य की बुद्धि तथा हृदय की गुप्त शक्तियां पूर्ण विकाश करें और उसे सर्वाङ्ग सुन्दर नागरिक बनावें !" जो मानव जीवन को सब दृष्टियों से विकसित करे, ऊँचे उठावे और आगे बढावे उसी को सच्चे अर्थों में शिक्षा कहाजासकती है, वर्तमान इंग्रेजी शिक्षापद्धति इस दृष्टि से निकम्मी साबित हुई है। अपने प्राणप्रिय बालकों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए हमें उनके लिए समुचित शिक्षा की ही व्यवस्था करनी चाहिये।

—:※:—

यदि हम यह प्रयत्न करते रहें कि जितने इस समय जानते हैं उससे अधिक जानें-तो निश्चय ही थोड़े दिनों में बड़े बुद्धिमान बन सकते हैं।

× × ×

जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य अन्न छोड़ कर मिट्टी नहीं खाता, उसी प्रकार कोई ज्ञानवान मनुष्य, सन्मार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर नहीं जाता।

× × ×

दुनियां में जितने भी पाप और दुख हैं वे सब अज्ञानता के कारण है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष पापियों और पीडितों से घृणा नहीं करता वरन उन पर दया दृष्टि से देखता है। × ×

तुममें भी एक विशेषता है।

(श्री डा० दुर्गाशंकरजी नागर सं० 'कल्पवृक्ष')

—:※:—

मनुष्य का मस्तिष्क असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओं का बना हुआ है और प्रत्येक अणु में असाधारण सामर्थ्य है। यह सब होते हुए भी मनुष्य हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, अपने आप को दीन हीन समझ रहे हैं। सोचते हैं कि हमारे आधीन कुछ नहीं है, भाग्य में लिखा है, सो होगा। मानसशास्त्र का सिद्धान्त है कि मनुष्य मनकी सबल भावना से अपने तन, मन, धन व शरीर को दुःखमय स्थिति को बदल सकता है। हमारे अन्दर वह शक्ति है कि हम चाहें जो कर सकते हैं। मनुष्य में उत्पादक सामर्थ्य है। मनकी इस प्रचंड शक्ति का विकास करने से मनुष्य के आगे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, बिजली हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं, हमारा मन, मनुष्य का मन. अखिलविश्व में व्यापक परमात्मा की दैवी इच्छा द्वारा अपने ऐश्वर्य को प्रकट कर रहा है, प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर की विभूतियों का आविष्कार हो रहा है।

वर्तमान स्थिति को बदल देने का सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य के हाथ में है। मनुष्य एकाग्रतापूर्वक जिस किसी विषय में मन को स्थिर करता है तो अल्प समय में ही मस्तिष्क में ग्रहण करने वाले वाले जीवाणु जाग्रत होकर सजातीय जीवाणुओं की वृद्धि करते हैं, और मानसिक शक्तियों का विकास होता है। पाठको . अपने को कभी परिस्थिति के वशीभूत मत समझो। तुम में एक विशेषता है। उसी को प्रकट करो। यह दृढ़ विश्वास करो कि तुम परिस्थिति पर अधिकार कर सकते हो। कभी भी निर्बल भावनाओं को, बुद्धि मंद है, अयोग्यता का अभाव है, ऐसे विचारों को मत आने दो।

———

चतुर्मुखी ब्रह्मा।

ब्रह्माजी की मूर्तियों में हम उनके चार मुख देखते हैं। यह चतुर्मुखी ब्रह्मा परमात्मा की सत्ता का एक अलंकारिक चित्र है। चार मुख उसके चार भेदों का दिग्दर्शन कराते हैं। इन चार मुखों को (१) ब्रह्म (२) ईश्वर (३) विष्णु (४) भगवान् कहा जाता है। वह एक ही महातथ्य है तो भी समझने की सुविधा के लिए उसे चार भेदों के साथ वर्णन किया गया है।

(१) ब्रह्म—सात्विकता की ऊँची कक्षा को ब्रह्म कहते हैं। वैसे तो परमात्मा सत्, रज, तम तीनों गुणों में मौजूद है पर उसकी ब्राह्मी ज्योति सतोगुण में ही है। सात्विक विचार, सात्विक भाव, ब्रह्म केन्द्र से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मन में यों तो अनेक प्रकार की इच्छाऐं उत्पन्न होती रहती हैं पर जब सतोगुणी आकाँक्षाऐं उत्पन्न होती हैं हैं तो उनका उद्गम केन्द्र–प्रेरक बिन्दु वह ब्रह्म ही होता है। ऋषियों में, महात्माओं में, संतों में, सत्पुरुषों में हम परमात्मा का अधिक अंश देखते हैं, उन्हें परमात्मा के समीप समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि परमात्मा की उन पर कृपा है। परमात्मा की विशेष सत्ता उनमें मौजूद है इसका प्रमाण यही है उनमें सत तत्व अधिक मात्रा में मौजूद है। यह सत का आधिक्य ही ब्राह्मी स्थिति है। पूर्ण सात्विकता में जो आधिष्ठित हो जाते हैं वे 'ब्रह्म निर्वाण' प्राप्त कहे जाते हैं।

मनुष्य की अन्तः चेतना प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बनी हुई है। मन बुद्धि और चित्त अहंकार प्रकृति के भौतिक तत्वों द्वारा निर्मित है, जो कुछ हम सोचते, विचारते, धारण या अनुभव करते हैं वह कार्य मस्तिष्क द्वारा होता है मस्तिष्क की इच्छा आकाँक्षा, रुचि तथा भावना इन्द्रिय रसों तथा सांसारिक पदार्थों की भली बुरी अनुभूति के कारण होती है। मस्तिष्क में जो कुछ ज्ञान, गति और इच्छा है वह सांसारिक, स्थूल पदार्थों के आधार पर ही बनती है, स्वयं मस्तिष्क भी शरीर का एक अंग है और अन्य अंगों की तरह वह भी पंचतत्वों से, प्रकृति से बना हुआ है इस अन्तःकरण चतुष्टय से परे एक और सूक्ष्म चेतना केन्द्र है जिसे आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म सात्विकता के केन्द्र हैं। आत्मा में से सदा ही सतोगुणी प्रेरणाऐं उत्पन्न होती हैं। चोरी, व्यभिचार, हत्या, ठगी आदि दुष्कर्म करते हुए हमारा दिल धड़कता है, कलेजा कांपता है, पैर थरथराते हैं, मुँह सूखता है, भय लगता है, और मन में तूफान सा चलता है, भीतर ही भीतर एक सत्ता ऐसा दुष्कर्म न करने के लिये रोकती है। यह रोकने वाली सत्ता-आत्मा है इसी को ब्रह्म कहते हैं, असात्विक कार्य-नीचता तमोगुण, पाप और पशुता से भरे हुये कार्य-उसकी स्थिति से विपरीत पड़ते हैं इसलिये उन्हें रोकने की भीतर ही भीतर प्रेरणा उत्पन्न होती है। यह प्रेरणा शुभ-सतोगुणी पुण्य कर्मों को करने के लिये भी उत्पन्न होती है। कीर्ति से प्रसन्न होना मनुष्य का स्वभाव है और यह स्वभाव अच्छे २ प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म करने के लिये प्रोत्साहन करता है। शुभ कर्मों से यश प्राप्त होता है और यश से प्रसन्नता होती है। यश न भी मिले तो भी सत्कर्म करने के उपरान्त अन्तरात्मा में एक शान्ति अनुभव होती है, यह आत्म तृप्ति इस बात का प्रमाण है कि अन्तःकरण की अन्तरंग आकांक्षा के अनुकूल कार्य हुआ है। दया, प्रेम, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, उपकार, सेवा सहायता, दान, ज्ञान, विवेक की सुख शान्तिमयी

इच्छा तरंगे आत्मा में से ही उद्‌भूत होती हैं। यह उद्‌गम केन्द्र ब्रह्म है।

वेदान्त दर्शन ने सारी शक्ति के साथ यही प्रतिपादित किया है कि आत्मा ही ईश्वर है। 'तत्वमसि', 'सोऽहम, शिवोऽहम' 'अयमात्मा ब्रह्म' सरीखे सूत्रों का अभिप्राय यही है कि आत्मा ही ब्रह्म है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अस्तित्व अपने आत्मा में ही देखने की वेदान्त की साधना है। अन्य ईश्वर भक्त भी अन्तःकरण में परमात्मा की झाँकी करते हैं. असंख्यों कविताऐं एवं श्रुतिवचन ऐसे उपलब्ध होते हैं जिनमें यह प्रतिपादन किया गया है कि "बाहर ढूँढने से नहीं अन्दर ढूँढने से परमात्मा मिलता है" संत कबीर ने कहा है कि परमात्मा हम से चौबीस अँगुल दूर है। मन का स्थान मस्तिष्क और आत्मा का स्थान हृदय है। मस्तिष्क से हृदय की दूरी २४ अँगुल है। इस प्रतिपादन में भी ईश्वर को अन्तःकरण में स्थित बताया है।

मनुष्य दैवी और भौतिक तत्वों से मिलकर बना है। इसमें मन भौतिक और आत्मा दैवी तत्व है। आत्मा के तीन गुण हैं सत चित् और आनन्द। वह सतोगुणी है श्रेष्ठ शुभ. दिव्य मार्ग की ओर प्रवृत्ति वाला एवं सतत हमेशा रहने वाला अविनाशी है। चित-चैतन्य, जागृत, क्रियाशील, गतिवान है, किसी भी अवस्था में वह क्रिया रहित नहीं हो सकती। आनन्द-प्रसन्नता, उल्लास,आशा तथा तृप्ति उसका गुण है। आनन्द की दिशा में उसकी अभिरुचि सदा ही बनी रहती है, आनन्द अधिक आनन्द-अति-आनन्द उपलब्ध करना उसके लिए वैसा ही प्रिय है जैसा मछली के लिए जल। मछली जलमग्न रहना चाहती है आत्मा को आनन्द मग्न रहना सुहाता है, सत्. चित, आनन्द गुण वाली आत्मा हर एक के अन्तःकरण में अधिष्ठित है। मन और आत्मा में जैसे जैसे निकटता होती जाती है वैसे ही वैसे मनुष्य अधिक सात्विक अधिक क्रियाशील और अधिक आनन्दमग्न रहने लगता है योगी जन ब्रह्म प्राप्ति के लिए साधना करते हैं, इस साधना का कार्यक्रम यह होता है कि आत्मा की प्रेरणा के अनुसार मन की सारी इच्छा और कार्य प्रणाली हो। भौतिक पदार्थों के नाशवान् अस्थिर और हानिकर आकर्षणों की ओर से मुँह मोड़कर जब आत्मा की प्रेरणा के अनुसार जीवन चक्र चलने लगता है तो मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर महान् मनुष्य बन जाता है ऐसे महापुरुषों के विचार और कार्य सात्विकता. चैतन्यता और आनन्ददायक स्थिति से परिपूर्ण होते हैं। उन्हें संत, महात्मा. योगी, तपस्वी परमहंस, सिद्ध आत्मदर्शी या ब्रह्म परायण कहते हैं। जिनका ब्रह्म भाव, आत्म विकाश पूर्ण सात्विकता तक विकसित होगया है समझना चाहिए कि उनने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया उन्हें आत्म दर्शन होगया।

ईश्वर—इस समस्त विश्व के मूल में एक शासक. संचालक एवं प्रेरक शक्ति काम करती है। सूर्य चन्द्र नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह निरन्तर अपनी नियत चाल से अविश्रान्त यात्रा जारी रखे हुए हैं। तत्वों के सम्मिश्रण से एक नियत व्यवस्था के अनुसार तीसरा पदार्थ बन जाता है, बीज अपनी ही जाति के पौधे उत्पन्न करता है, सूर्य एक पल का विलम्ब किये बिना ठीक समय पर उदय और अस्त होता है। समुद्र के ज्वार भाटा नियत समय पर आते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सब की क्रियाऐं अचूक हैं। नन्हें नन्हें अदृश्य परमाणु अत्यन्त द्रुत गति से हरकत करते हैं पर उनकी इस गति में रंच मात्र भी अन्तर नहीं आता। एक परमाणु को दूसरे परमाणु से लड़ाने का रहस्य को ढूँढ कर वैज्ञानिकों ने प्रलयकारी 'परमाणु बम' बनाये हैं। यदि यह एक सैकिंड में हजारों मील की गति से घूमने वाले यह परमाणु आपस में लड़ जाया

करते तो आये दिन प्रलय उपस्थित हो जाया करती परन्तु हम देखते हैं कि प्रकृति का हर एक परमाणु अपने गुण, कर्म को ठीक प्रकार कर रहा है।

यदि सृष्टि में नियमितता न होती तो एक भी वैज्ञानिक आविष्कार सफल न होता। आग कभी गर्मी देती कभी ठण्डक, तो भला उसके भरोसे कोई काम कैसे होता। नित्य अनेकों वैज्ञानिक आविष्कार होरहे हैं इनका आधार इसी पर निर्भर है कि प्रकृति की दृश्य एवं अदृश्य शक्तियाँ अपने नियत नियमों से रंच मात्र भी विचलित नहीं होती। यह सर्व मान्य और सर्व विदित तथ्य है कि प्रकृति की समस्त क्रिया प्रणाली नियमित है, उसके मूल भूत नियमों में कभी अन्तर नहीं पड़ता।

इस नियमितता और गतिशीलता के मूल में एक सत्ता अवश्य है। विचार और प्राण से रहित जड़ प्रकृति अपने आप इस क्रिया कलाप को नहीं चला सकती। रेल, मोटर, इंजन, हवाई जहाज, तलवार-कलम आदि जितने भी निर्जीव यन्त्र हैं उनको चलाने वाला कोई न कोई सजीव प्राणी अवश्य होता है, इसी प्रकार प्रकृति की नियमितता और गतिशीलता का उद्गम केन्द्र भी कोई न कोई अवश्य है। इस केन्द्र को हम ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ है स्वामी। जड़ प्रकृति के निर्माण, व्यवस्था एवं संचालन में जो शक्ति काम करती है वह ईश्वर है।

केवल जड़ प्रकृति का ही नहीं, चेतन जगत का भी वह पूरी तरह नियमन करती है। इसने अपने नियमों के अन्तर्गत प्राणिमात्र को बांध रखा है। जो उस ईश्वर के नियमों के अनुसार चलते हैं वे सुखी रहते हैं, विकसित होते हैं और जो उन नियमों को तोड़ते हैं वे दुख पाते और हानि उठाते हैं। स्वास्थ्य के नियमों पर चलने वाले, सदाचारी संयमी मिताहारी लोग स्वस्थ रहते हैं और चटोरे दुराचारी, स्वेच्छाचारी लोग बीमारी कमजोरी एवं अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वाले ईश्वरीय नियमों को ठीक प्रकार पालन करते हैं वे उन क्षेत्रों में स्वस्थता, समृद्धि एवं उन्नति प्राप्त करते हैं जो उन नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हैं वे उन क्षेत्रों में दुष्परिणाम भुगतते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, प्रयत्न, लगन, साहस, उत्साह एवं धैर्य यह सब सफलता के मार्ग की ईश्वरीय पगडंडियाँ हैं इन पर जो चलते हैं वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस राजमार्ग पर नहीं चलते वे पिछड़ जाते हैं।

ईश्वर पूर्णतया निष्पक्ष, न्यायकारी नियत रूप है। वह किसी के साथ रत्ती भर भी रू रियायत नहीं करता। जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है। अग्नि या बिजली के नियमों के अनुसार यदि उनसे काम लिया जाय तो वे हमारे लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं पर यदि अग्नि का या बिजली का दुरुपयोग किया जाय तो वह भयंकर दुर्घटना उपस्थित कर देती है। इसी प्रकार जो लोग ईश्वरीय नियमों के अनुसार काम करते हैं उनके लिये ईश्वर वरदाता, त्राता, रक्षक, सहायक, कृपा सिन्धु, भक्त वत्सल है पर जो उसके नियमों में गड़बड़ी करता है उसके लिये वह यम, काल, अग्नि शंकर, वज्र, एवं दुर्दैव बन जाता है। मनुष्य को स्वतन्त्र बुद्धि देकर ईश्वर ने उसे काम करने के लिये स्वच्छन्द अवश्य बना दिया है पर नियमन अपने ही हाथ में रखा है। वह जैसे को तैसा फल दिये बिना नहीं छोड़ता। आग और लकड़ी को इकट्ठा करना या न करना यह हमारी इच्छा पर निर्भर है पर उन दोनों के इकट्ठा होने पर ईश्वरीय नियमों के अनुसार जो ज्वलन क्रिया होगी उसे रोकना अपने बस की बात नहीं है। इसी प्रकार शुभ अशुभ कर्म करना तो हमारे अपने हाथ में है

पर उनसे जिन भले बुरे परिणामों की उत्पत्ति होगी वह ईश्वरीय नियामक शक्ति के हाथ में है।

जैन और बौद्ध कर्म के फल की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं अतएव वे ईश्वर को, बुद्ध को द्वतीय सत्ता को—मानते हैं। सत्कर्म करना प्रकृति के कठोर अपरिवर्तन शील नियमों का ध्यान रखना, अपने आचरणों और विचारों को ईश्वरीय नियमों की मर्यादा में रखना ईश्वर पूजा है। अपनी योग्यता और शक्तियों को समुन्नत करना, बाहुबल के आधार पर आगे बढ़ना, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना ईश्वर वादियों का प्रधान स्वभाव होता है क्योंकि वे जानते हैं कि सबलों क्रियाशीलों और जानरूकोंको बढाना और कमजोरो.अकर्मयमों एवं असावधानों को नष्ट करना प्रकृति का नियम है। इस कठोर नियम में किसी के बूते कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ईश्वरवादी इस नग्न सत्य को भला भांति जानते हैं कि—"ईश्वर उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है।" इसलिए वे ईश्वरीय कृपा प्राप्त करके उसके नियमों से लाभ उठाने के लिए सदा शक्ति संचय करने एवं आगे बढने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। आत्म निर्भर और आत्मावलम्बी होते हैं। अपने भाग्य का आप निर्माण करते हैं। ईश्वरीय नियमों को ध्यान पूवक देखते, परखते और हृदयंगम करते हैं तथा उनकी वज्रोपम कठोरता एवं अपरिवर्तन शीलता का ध्यान रखते हुए अपने आचरणों को "औचित्य" की, धर्म की, सीमा के अन्तर्गत रखते हैं।

क्रमशः यदि तुम संसारमें कुछ करना चाहते हो तो महत्ता के विचारों को ही सदा सवदा मस्तिष्क में संग्रह करो। तुम्हारे मस्तिष्क में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। तुम दुर्भाग्य की ठोकरें खाने के लिये नहीं उत्पन्न हुए हो।

— — *

संकट से बचने का उपाय

(श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार सं०-'कल्याण')

—:*:—

इस समय सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, संसार भर में अन्न संकट छाया हुआ है। वायसराय महोदय ने हमारे देश वासियों से कहा है कि इस संकट के समय वे महात्मा गांधी और श्री जिन्ना साहब के बताये हुए मार्ग पर चलें। यथा साध्य कम खाकर काम चलावें। अमीर गरीब त्याग करें। श्री गांधीजी ने हमें अन्न की आवश्यकता को कम करने की सलाह दी है। उनके अनुसार अन्न के बदले आलू और साग सब्जी खायें जहां जल की सुविधा हो वहां वनस्पति पैदा करें। तिलहन, तेल इत्यादि को रफ्तानी रोक दी जाय बगीचों में खेती हो। सब मिलकर कार्य करें।

उपर्युक्त सभी बातें हित की हैं। यह सब होते हुए भी एक ऐसी आवश्यक बात है जिसके हुए बिना सफलता सम्भव नहीं। वह है श्री भगवान् की आराधना। जो संकट आ रहा है, वह मानव के पाप का परिणाम है और इसमें जिसका कम या ज्यादा पाप है, उस पर उतना ही संकट कम या ज्यादा आवेगा।

भगवान् पर विश्वास, भगवद्साधन तथा भगवान् की प्रसन्नता के लिये किए जाने वाले स्वधर्माचरण से बुद्धि शुद्ध होती है और बुद्धि के शुद्ध होने पर बुरे कर्मों से मन स्वतः ही हट जाता है। भगवान् पर विश्वास न रहने से और धर्म पर श्रद्धा न होने से ही, और पापों से परिणाम रूप दुःख-दुर्गति, दुर्भाग्य की अनिवार्यता पर विश्वास न रहने के कारण ही आज लोग केवल इसलौकिक व्यक्तिगत सुख और इन्द्रिय चरितार्थता के लिए कामोपभोग परायण होकर मनुष्य असुर बन गए हैं। जब तक पापा के लिये मन में घोर पश्चाताप उत्पन्न नहीं होता तब तक वर्तमान संकट से बचा भी नहीं जाता।

यज्ञ द्वारा रोगों की चिकित्सा

——※——

तत्वों में वायु बहुत सूक्ष्म है। पृथ्वी, जल, अग्नि की अपेक्षा वायु की सूक्ष्मता अधिक है। इसलिये उसका गुण और प्रभाव भी अधिक है। अन्न और जल के बिना कुछ समय मनुष्य जीवित रह सकता है पर वायु के बिना एक क्षण भर भी काम नहीं चल सकता। शरीर में अन्य तत्वों के विकार उतने खतरनाक नहीं होते जितने कि वायु के विकार। जिस स्थान पर वायु विकृत होगी वही अंग तीव्र वेदना का अनुभव करेगा और अपनी समस्त शक्ति खो बैठेगा। वायु प्राण है इसलिये प्राणवायु पर जीवन की निर्भरता मानी जाती है। सांस रुकजाय या पेट फूलजाय तो मृत्यु को कुछ देर नहीं लगती। लोग वायु सेवन के लिये जरूरी काम छोड़ कर समय निकालते हैं। जहां की हवा खराब होजाती है वहां नाना प्रकार की बीमारियां, महामारियां फैलती हैं इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति वहाँ रहना पसन्द करते हैं जहां की वायु अच्छी हो। प्राणायाम करने वाले जानते हैं कि विधि पूर्वक वायु साधना करने से उन्हें कितना लाभ होता है। निस्सन्देह वायु का स्वास्थ्य से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है और वायु के प्रयोग द्वारा मनुष्य अपनी बिगड़ी हुई तन्दुरुस्ती को ठीक कर सकता है।

चिकित्सा जितनी स्थूल होती है उतना ही कम प्रभाव डालती है। चूर्ण चटनी, अवलेह आदि के रूप में ली हुई दवा पहले पेट में जाती है, वहां पचती है तब रक्त बनकर समस्त शरीर में फैलती और अपना असर दिखाती है। यदि पाचन न हुआ तो वह दवा मल मार्ग से निकल जाती है और अपना असर नहीं दिखाती। जिनकी पाचन शक्ति ठीक नहीं होती उन्हें 'पुष्टाई के पाक' कुछ भी फायदा नहीं करते क्योंकि वे दवायें बिना पचे मल द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ऐसी दशा में पतली पानी के रूप में तैयार हुई दवाऐं अधिक काम करती हैं क्योंकि स्थूल आहार की अपेक्षा जल जल्दी पच जाता है। इंजेक्शन द्वारा खून में मिलाई हुई दवाऐं और भी जल्दी शरीर में फैल जाती हैं। हवा का नम्बर इससे भी ऊँचा है वायु द्वारा सांस के साथ शरीर में पहुँचाई हुई हवा बहुत जल्द असर करती है। जुकाम जैसे रोगों में सूँघने की दवाऐं दी जाती हैं। क्लोरोफार्म सुँघाने से जितनी जल्दी बेहोशी आती है उतनी जल्दी उसे खाने से नहीं आसकती।

इन सब बातों को ध्यान रखते हुए भारतीय ऋषि मुनियों ने यज्ञ हवन की बड़ी ही सुन्दर वैज्ञानिक विधिका आविष्कार किया है। हवन में जलाई हुई औषधियां नष्ट नहीं होती वरन सूक्ष्म रूप धारण करके अनेक गुनी प्रभाव शालिनी हो जाती हैं और अनेकों को आरोग्य प्रदान करती हैं। लाल मिर्च के एक टुकड़े को जब आग मे डाला जाता है तो वह सूक्ष्म होकर हवा में मिलकर चारों ओर फैलता है और दूर तक बैठे हुए लोगों को खांसी आने लगता है। इससे प्रकट है कि जलने पर कोई वस्तु नष्ट नहीं होती वरन् सूक्ष्म होकर वायु में मिल जाती है और उस वायु के सम्पर्क में आने वालों पर उस वस्तु का असर पड़ता है। हवन के धार्मिक रूप को छोड़ दें तो भी अग्निहोत्र सम्बन्धी महत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है।

बाजार में कृमि नाशक फिनाइल की भांति की एक अंग्रेजी दवा फार्मेलिन बिकती है। इससे बीमारियों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। यह दवा फार्मिक आलडी हाइड गैस से बनती है। फ्रांस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर ट्रिले ने बताया है कि उपरोक्त गैस लकड़िया जलाने या खांड़ जलाने से उत्पन्न होती है। जो काम बहुत कीमत खर्च करने पर फार्मेलिन जैसी दवाओं से होता है वह कार्य

अग्निहोत्र द्वारा अधिक उत्तमता से हो जाता है। दवा तो वही असर करती है जहां छिड़की जाती है पर अग्निहोत्र द्वारा तो वह कार्य वायु द्वारा बड़े पैमाने पर हो जाता है।

फरांसीसी वैज्ञानिक टिलवर्ट की शोध है कि शक्कर जलाने से जो गैस उत्पन्न होती है उससे हैजा, पैदिक चेचक आदि रोगों का विष दूर होता है। डाक्टर हेफकिन का परीक्षण है कि घी जलाने से उत्पन्न गैस चर्मरोग, रक्त विकार, शुष्कता, दाह एवं अंत्र रोग उत्पन्न करने वाले विष कीटाणुओं को नष्ट करती है। डाक्टर टाटलिंट ने दाख के धुँऐ को टाइफाइड और निमोनिया ज्वर को मिटाने वाला बताया है।

सूर्य के द्वारा पृथ्वी पर जो गर्मी आती है उसे उपयुक्त मात्रा में कायम रखने के लिये कार्बनडाया आक्साइड गैस बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करती है। यह गैस हवा में करीब $\frac{1}{830}$ होती है। यदि यह परमाणु थोड़ा भी घट बढ़ जाता है तो उसका पृथ्वी के मौसम पर बड़ा असर पड़ता है। यदि यह परिमाण दूना हो जाय तो इतनी गर्मी बढ़ सकती है कि कहीं बर्फ के दर्शन भी न हों और यदि यह आधी रह जाय तो समस्त भूमंडल बर्फ से ढक जावे।

उपरोक्त गैस जहां ज्यादा बनती है वहां आकाश में गर्मी ज्यादा बढ़ जाती है फलस्वरूप वर्षा भी अधिक होती है। ज्वालामुखी पहाड़ों से यह वायु निकली है इसलिये वहाँ वर्षा भी अधिक होती है और हरियाली छाई रहती है। फ्राँस के यूवरीन चश्मे से यह गैस निकलती है फल स्वरूप वहां वर्षा और बनस्पति की अधिकता रहती है। हवन द्वारा भी यही कार्बनडाया आक्साइड गैस उत्पन्न होती है। जहां हवन अधिक होते हैं वहां वर्षा और बनस्पति की अधिकता रहती है फलस्वरूप वहां की आवहवा भी स्वास्थ्यकारक होती है। गीता में भी ऐसा ही संकेत किया गया है।

हवन जहां एक धार्मिक कृत्य है वहां वह मानसिक और शारीरिक-स्वस्थिता प्रदान करने वाला भी है। यज्ञ में लोक कल्याण के लिये समिष्टि आत्मा-परमात्मा की उपासना के लिए अपनी वस्तुओं का त्याग-समर्पण होम करने से परमार्थ, त्याग, उदारता एवं पवित्रता की मनोभावनाऐं उत्पन्न होती हैं ऐसी भावनाओं का उदय होना अनेक प्रकार के मानसिक रोगों को निर्मूल करने के लिए सर्वश्रेष्ठ उपचार है। डायाकार्बन गैस बढ़ने से वर्षा की अधिकता द्वारा संसार की समृद्धि बढ़ती और आवहवा शुद्ध होती है। स्वस्थता प्रदान करने वाला और रोग नाशक औषधियाँ अग्नि की सहायता से सूक्ष्म रूप धारण करके शरीर में व्याप्त हो जाती हैं और निरोगता की स्थापना में बड़ा महत्व पूर्ण कार्य करती हैं। फेफड़े और मस्तिष्क के रोगों के लिये तो हवन द्वारा पहुंची हुई औषधि मिश्रित वायु बहुत ही हितकर सिद्ध होती है। होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति के आविष्कारक डाक्टर हनीमैन ने अपनी पुस्तक आर्गेनन आफदी मेडीसन्स की १९० वीं धारा में औषधियों सूँघने की महत्ता को स्वीकार किया है। ऐलोपैथिक डाक्टर भी Kreosote और Eucalyptus Oil आदिका Inhalation बनाकर सुंघाते हैं। आयुर्वेद तो धूनी देने, धूम्रपान करने आदि के विधानों से भरा पड़ा है।

जिन स्थानों की आवहवा स्वास्थ्यके लिए विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है वहां की हवा में ओजोन (Ozone) नामक एक गैस पाई जाती है यह एक प्रकार की तीव्र आक्सिजन है। यदि हवा में इसका पचीस लाखवां भाग हो तो भी वहां की वायु बहुत उपयोगी होती है। हवन द्वारा ओजोन गैस उचित मात्रा में प्राप्त होती है। इस प्रकार साधारण स्थानों में भी शिमला नैनीताल जैसी शुद्ध हवा घर बैठे मिल जाती है।

सोने का एक टुकड़ा यों ही किसी को खिला दिया जाय तो कुछ लाभ न होगा। किन्तु उसी सोनेको सूक्ष्म करके भस्म या वर्क बनाकर खिलाया जाय तो अधिक फायदा होगा। बादाम यों ही खाये जायें तो उतना लाभ न होगा पर यदि उन्हें पत्थर पर पानी में घिसकर खाया जाय तो अधिक लाभ हो। कारण यह है कि किसी वस्तु को जितना सूक्ष्म बना लिया जाता है उतनी ही वह लाभदायक हो जाती है। औषधियों के बारे में भी यही बात है, पीपल का एक टुकड़ा यों ही खा लें तो उसकी कुछ विशेष उपयोगिता नहीं बरन्तु चौसठ प्रहर लगाकर घोटने के बाद जो "चौहठ पहरा पीपल" बनती है वह बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है। सूक्ष्मता से शक्ति उत्पन्न होती है। होम्योपैथी में सूक्ष्मता के अनुपात से ही पोटेन्सी बढ़ती जाती है। यज्ञ द्वारा औषधियाँ सूक्ष्म होकर बहुत उपयोगी हो जाता हैं। और तुरन्त लाभ दिखाती हैं। जो पोषक पदार्थ हवन में जलाये जाते हैं वे रोगी के शरीर में प्रवेश करके उसकी बलवृद्धि करते हैं। ग्लूकोज का एक छोटा इंजेक्शन एक सेर अगूर खाने की अपेक्षा अधिक शक्तिवर्धक होता है। इसी प्रकार छटांक भर घी खाने की अपेक्षा रोगी व्यक्ति उसके हवन द्वारा अधिक बल प्राप्त कर सकता है। —क्रमशः

—·—

जिस प्रकार माता अपने छोटे बच्चे को बचपन में असहाय अवस्था में प्रवेश करते हुए देखकर उसे प्रेम और करुणा की दृष्टि से देखती है उसी प्रकार आत्मज्ञानी पुरुष संसार के जीवों को दुख और संकटमय जीवन में से निकलते हुए देखकर उनसे दया, अनुकम्पा, प्रेम-सहानुभूति और सेवा का व्यवहार करता है।

× × ×

सात्विक कमाई का प्रभाव।

(श्री पं० परमानन्द पाण्डेय शास्त्री, वैद्यरत्न)

—※—

एक सौ पाँच वर्ष का बूढ़ा एक बार किसी मरीज की सिफारिश करने मेरे पास आया। बूढ़े के मुख पर तेज था, सारे दाँत साबत थे, बाल भी काले थे और रगपट्ठों में बल सुरक्षित था। मैंने उससे पूछा—"बाबा! आप क्या खाते हैं? उन्होंने कहा—' दाल रोटी और वह भी रूखी सूखी ईमानदारी से कमाई हुई। मेरी धर्मपत्नि के प्रेम पूर्ण हाथों से बनाई हुई और बड़ी शान्ति और संयम से ग्रहण की गई। देखे जी! लोग समझते हैं कि बहुत बढ़िया भोजन खाने से शरीर में बल आता है परन्तु मेरा तो अनुभव यह है कि मनुष्य को कोई क्लेश न हो, चिन्ता न हो, ईमानदारी से वह मेहनत करता हो, शुद्ध उसकी भावना हो, तो वह चाहें चने चबाय, उसका शरीर लोह का सा बन जायगा एक तो मेरी परिश्रम की सात्विक कमाई है, दूसरे मेरे स्वास्थ्य का श्रेय, मेरी धर्मपत्नि को है जिस समय मैं थकाथकाया शाम को घर पहुंचता हूं तो उनके प्रेमपूर्ण दर्शन से मैं इतना स्वस्थ हो जाता हूं जितना अमृतपान करने वाला देवता। जिस समय जिस वस्तु की मुझे आवश्यकता होती है, उसका प्रबन्ध मेरे घर की स्वामिनी ने ऐसा किया होता है मानों वह मेरे हृदय में घुसकर प्रबन्ध करती हो। कभी आज तक मुझे अपनी आवश्यकता कठिन स्वर से नहीं कहनी पड़ी। बच्चोंकी देखभाल घर का प्रबन्ध, मेरी सेवा, यह सब जिस गृहदेवी के हाथों से होते हैं, उसे देखकर मैं इतने वर्षों से जी रहा हूँ—सुख से जी रहाहूं और इतना तन्दुरुस्त होकर जी रहा हूं कि मुझे आज तक किसी औषधि की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।"

सात्विक कमाई और दाम्पत्य प्रेम से सचमुच मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

मन की शक्ति बढाने के उपाय :—

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

—※—

मन की शक्ति एकाग्रता एवं मनन से विकसित होती है। इधर उधर चंचलता पूर्वक भ्रमण करने से, चिन्ताओं एवं भ्रान्तियों के वशीभूत होने से, मन: प्रवृत्ति अनेक दुर्दमनीय कष्टों का, अनेक पराजयों का कारण बनती है। यदि एक निर्दिष्ट कार्य में मन एकाग्र न किया जाय तो समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं। निर्दिष्ट समय पर अन्य समस्त विचारों को मन: प्रदेश से बहिर्गत कर एक तत्त्व पर अन्तर्त्र एकाग्र करने से मन की शक्ति प्रकट होती है।

एकाग्र ध्यान के दो मुख्य प्रकार हैं—अक्रिय तथा सक्रिय। अक्रिय ध्यान में इन्द्रियों को शान्त कर मनोवृत्ति को ग्राहक किया जाता है। समस्त वृत्तियों को पूर्णशान्त रखना होता है। "मैं पृथ्वी पर परमात्म-तत्त्व का महत्तम, सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट रूप हूं।—"केवल इसी भाव पर चित्त वृत्तियों का एकाग्र रखना होता है। ध्यान का दूसरा भेद है—सक्रिय ध्यान। सक्रिय ध्यान में मनको क्रियात्मक ग्रहणोचित वृत्ति में रक्खा जाता है। एकाग्रता से शब्द सुनना होता है। एक ही साथ भावनाओं को ग्रहण करना एवं बाहर भेजना होता है। इस प्रकार मन की द्विधा क्रिया होती है। जो कुछ कहा जाता है, उसे सुनने एवं उसी समय निर्णय करके मूक मानसिक उत्तर देते हैं।

हमें क्या इष्ट है ?

तुम अपना अक्रिय ध्यान उस व्यक्ति की ओर मत करो जो तुमसे अनुग्रह अथवा लाभ उठाना चाहता है। यद्यपि तुम्हें दूसरे की भावनाएँ ग्रहण करना चाहिए, तथापि तुम्हें अपने मन की ऐसी बहिन वृत्ति रखनी चाहिये, जिससे तुम पर किसी अवांछनीय प्रभाव का आक्रमण न हो सके। तुम्हें द्वारपाल के समान स्थिर रहना चाहिये तथा किसी अनुचित तथा अनर्थकारी सूचना Suggestion का संचार मन के भीतर न होने देना चाहिये, बाहर भेजा हुआ प्रत्येक विचार तुम्हारी इच्छा के वश में होना चाहिये। जब तक सदभाषण का स्वभाव स्थिर रूप से न बन जाय तब तक प्रत्येक शब्द को सावधानी से बोलते रहो तथा प्रत्येक कार्य सूक्ष्म अन्तरात्मा की अनुमति से करते रहो। प्रत्येक कार्य में अपनी सच्ची संकल्प शक्ति का संचार करते रहो।

दार्शनिक कैन्ट ने एक स्थान पर निर्देश किया है कि नीतिमय जीवन का प्रारम्भ होने के लिये विचार क्रम में परिवर्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है। भारतीय परिभाषा के अनुसार :-

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥—उपनिषद्

अर्थात् सत्य, तप, तथा सात्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहने से ही आत्मतत्त्व का दर्शन हो सकता है। ये सभी बातें मनः साधना की ओर संकेत करती हैं। जीवन में दर्शन का फल है, मन: सभ्यता का उदय। साधना की भावना से सात्विकी श्रद्धा का जन्म होता है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता के अनुभव का विषय बना सकना ही श्रद्धा का लक्षण है। भारतीय विचारकों ने अपने वाङ्मय के उषःकाल से ही इस महत्वपूर्ण तत्व को समझकर उसका प्रचार किया है। ज्ञानसिद्धि, ऋषि-महर्षियों का जो साक्षात्कार था, उसको उन्होंने "श्रुति" कहा है। श्रुति का जन्म प्रज्ञा से होता है। प्रज्ञा (Intuition) ज्ञान प्राप्ति का सबसे सूक्ष्म साधन है। योग समाधि के द्वारा चित्त को संस्कृत करने का फल हमारे

ज्ञान-यन्त्र के लिये पतंजलिने यों बतलाया है—"ऋतम्भरा तत्र युला" अर्थात आध्यात्मिक दर्शन की उच्चतम अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। ऋत जिसमें भरता हो, ऐसी बुद्धि ऋतम्भरा है। मन के तर्क वितर्क द्वारा संचय होने वाला ज्ञान सत्य है। हृदय की अनुभूति या तत्व साक्षात्कार से उपलब्ध अनुभव "ऋत" है। योगी की प्रज्ञा ऋतात्मक ज्ञान का भरण करती है।

बुद्धि का यथार्थ स्वरूप,

बुद्धि, यथार्थ में प्रतिभा का एक संस्कारित स्वरूप है। भावुकता अर्थात् कल्पनात्मक महानुभूति, बुद्धि का एक गुण है। नाना प्रकार के विचार कल्पनाएँ मानस चित्र निर्माण करना, सोचना, तर्क करना बुद्धि के व्यापार हैं। कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति अधिक स्पष्ट मानस-चित्र विनिर्मित करता है। कल्पना करना ज्ञान के आधार पर उन मानस-चित्रों को अधिकाधिक स्पष्ट करना, उनमें भावुकता (Feeling) का संचार करना यह बुद्धिमानों की आन्तरिक अवस्था है। जब तक उक्त तत्वों में पूर्ण सामंजस्य नहीं, तब तक बुद्धि में परिपक्वता का संचार नहीं हो सकता। तर्क से कल्पना का अनौचित्य प्रक्षालित होता है और बुद्धि का विशुद्ध व्यवहारिक रूप प्रकट होता है। बुद्धिमान की विविध योजनाएँ व्यवहारिकता के आधार पर विनिर्मित होती हैं। मनुष्य के मन का विकाश अधिकता उसकी बुद्धि के विकास पर ही निर्भर है। बुद्धि की शक्ति मस्तिष्क के सूक्ष्म कोषों (Cells) में निवास करती है। जिज्ञासा एवं स्मरण शक्ति बुद्धि के विशिष्ट अंग प्रत्यंग हैं। मनन से मन की शक्ति बढ़ती है। निर्दिष्ट समय पर दूसरे सब विचारों को छोड़कर एक "आत्म-तत्व" पर मनको एकाग्र करना चाहिये।

चित्त की शाखा-प्रशाखाएँ :—

चित का प्रधान कार्य जानना या अनुभव करना है। चित्त को योगदर्शन एवं सांख्य सूत्रों में प्रकृति के सतोगुण का परिणाम माना गया है। चित्त वृत्तियों का भंडार है। चित्त की वृत्तियों को वश में करना, रोकना, विरोध करना ही शान्ति का मूल है—योगश्चित्त वृत्तिविरोध।

चित्त की वृत्तियों के दो भेद हैं—अन्तःवृत्तिः, बहिर्वृत्ति, बहिर्वृत्ति। कुछ व्यक्तियों की वृत्त बाह्यसंसार की उलझनों से ऊबकर अन्तःकरण के विवेक की ओर लग जाती है। इसमें व्यक्ति अन्त जगत् के गूढ रहस्यों में पूर्ण निमग्न रहता है। वह आत्मा के अन्तराल में विचरण करता है। प्रकृत्त पुरुष का वास्तविक ज्ञान ही उसका प्रधान लक्ष्य होता है। और इस तत्वज्ञान की प्राप्ति से समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं।

द्वितीय वृत्ति है बहिर्वृत्ति अर्थात् केवल सांसारिक वस्तुओं का देखना सुनना, उनमें लिप्त रहना रजोगुण एवं तमोगुण के कारण विषयों की ओर वृत्ति झुकी रहती है, जैसे काम, क्रोध, लोभ आलस्य इत्यादि में प्रवृत्त। अधिकांश अस्थिर व्यक्तियों की वृत्ति बार्हिवृत्त ही होती है। विषयों में लिप्त रहने के कारण उन्हें नाना प्रकार के क्लेशों को भोगना पड़ता है। भोग की सांसारिक वृत्तियों को क्लिष्ट कहते हैं।

पातंजलि के अनुसार चित्तवृत्तियां :—

वृत्तियां अगणित भी हो सकती हैं। महर्षि पातंजलि के अनुसार वृत्तियों का स्वरूप देखिये। महर्षि पातंजलि कहते हैं:—"प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः (१,६)। लौकिक ज्ञानका जो सम्बन्ध है, वह प्रमाण कहलाता है। इसके तीन भेद है—प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम। प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो नेत्रों इत्यादि इन्द्रियों से प्राप्य है। अनुमान उसे कहते हैं जिसे हम कुछ चिन्ह देखकर अनुमान कर लते हैं। 'अगाम' शास्त्रोक्त वचन अर्थात् सच्चे तत्व ज्ञानी आप्त मनुष्यों के शब्दों

कपाल भाति क्रिया।

(योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी)

—※—

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससम्भ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् लोहकारकी भस्त्रा (धौंकनी) के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक पूरक श्वास प्रश्वासको शान्तिपूर्वक करना, योगशास्त्र में कफ दोषका नाश कहा गया है। वह क्रिया 'कपालभाति' नाम से विख्यात है।

अपूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि।

प्रथम पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन में बैठ जाना चाहिये। बायें घुटने पर बाईं हथेली और दाहिने घुटने पर दाहिनी हथेली रखें। पीठ की रीढ़, कमर और शिर समरेखा में रहे। किंचित् छाती को फूली हुई रखने के बाद दस बार दोनों नथनोंसे श्वास लेवें और छोड़ें। चक्षु बन्द रखें। दस बार श्वास क्रिया करने के बाद दो से तीन मिनट तक स्वाभाविक श्वास लेवें, और उस समय आरोग्य के विचारोंको करें, यह क्रिया अपूर्ण कपालभाति कर्म कहलाती है।

सम्पूर्ण कपालभाति कर्म करने की विधि।

उपर्युक्त अपूर्ण कपालभाति कर्म प्रतिदिन प्रातः काल तीन बार करने के चौथे दिन दस बार घर्षण (एक बार श्वास फेफड़े में भरना और झट बाहर निकालना उसका नाम घर्षण है) करें। और ग्यारहवें समय प्राणवायुको यथेच्छ फेफड़े में भर कर दोनों नथनों को दाहिने हाथ के अँगुष्ठ तर्जनी और मध्यमासे पकड़ें। सरलतापूर्वक जितनी देर श्वास रोक सकने की इच्छा हो उतनी देर जालंधर बन्ध करें। और फिर दोनों नथनों से शनैः शनैः रेचक करें। तब एक पूर्ण कपालभाति कर्म कहलाता है। इस तरह आठ दिन तक तीन सम्पूर्ण कपालभाति कर्म करें। आठ दिन से पन्द्रह दिन तक पाँच कपालभाति कर्म करें। और पन्द्रह दिन से एक महीने तक आठ करें। एक महीने के बाद प्रतिदिन शक्ति के अनुसार आठ से बारह बार कर सकते हैं। रेचक करने के समय उड्डीयान बन्ध और मूलबन्ध रखें।

यदि प्रारम्भ में इस कर्म का अधिक वेगपूर्वक घर्षण किया जावे तो किसी नाड़ी में आघात पहुँचना सम्भव है। और शक्ति से अधिक प्रमाणमें करें तो फेफड़ों में शिथिलता आजायगी। यह कर्म मध्यम गति से होना चाहिये। गर्भवती स्त्रियां, फेफड़ों में क्षत पड़ा हो, वमन रोग, मनकी भ्रमित अवस्था, हृदयकी निर्बलता आदि रोग से ग्रस्त हुए स्त्री, पुरुष इस कर्म को न करें। ——

द्वारा प्राप्त होता है। अन्य चार वृत्तियां ये हैं:—

विपर्यय—जिससे मिथ्या ज्ञान हो। 'विपर्यय मिथ्या ज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठाम' अर्थात् वह ज्ञान जो सच्चे रूप में स्थित नहीं है।

विकल्प—जो वस्तु शून्य अर्थात् वास्तव में कुछ हो ही नहीं, किन्तु केवल शब्द मात्र से जानी जाय। वेदान्ती समग्र संसार की वस्तुओं को विकल्प ही मानते हैं।

निद्रा—किसी पदार्थ के न होनेका प्रत्यय अर्थात् ज्ञान जिस वृत्ति का आलम्बन है उसे निद्रा कहते हैं। जब स्वप्न आते हों तो वह निद्रा नहीं है।

स्मृति—अन्तिम वृत्ति स्मृति है। यह अनेक दुःखों का कारण बन जाती है। अतएव, इसका विरोध होना आवश्यक है (अनुभूताविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृति)। स्मृति अनुभव से न्यून का तो ज्ञान कराती है, किन्तु अधिक का नहीं।

उक्त वृत्तियां यदि सात्विक हों तो सुख उत्पन्न करेंगी और सुख से राग उत्पन्न होगा। अर्थात् मन सुख के वशीभूत होगा तो मुक्तिमें बाधा पड़ जायगी इन वृत्तियों का विरोध ही मुक्ति की इच्छा करने वाले को परमावश्यक है।

नेत्र-रक्षा के उपाय ।

(१) गैस, बिजली, लैम्प आदि की तेज रोशनी के सामने बहुत देर तक पढ़ने, लिखने में प्राय: पीड़ा, हृदय और नाड़ियों में दुर्बलता या रक्तविकार आदि उपद्रव उत्पन्न होजाते है। इसलिये तेज रोशनी में कभी नहीं लिखना पढ़ना चाहिये।

(२) लेटकर, सोते हुये या ऊंगते हुये शरीर में अधिक उत्तेजना अथवा थकावट के होने पर लिखने पढ़ने का काम नहीं करना चाहिये।

(३) घोड़ा, रेल, मोटर, हवाई जहाज, पैर गाड़ी आदि बहुत तेज चलने वाली सवारियों में बैठकर और भोजन करने के बाद तत्काल पढ़ने लिखने से नेत्रों को बहुत हानि पहुँचती है इसलिये उक्त समय में लिखना पढना बन्द रखना चाहिये।

(४) बहुत बारीक अक्षरों की छपी या लिखी हुई पुस्तक को बहुत देर तक नहीं पढना चाहिये। ऐसी पुस्तक अधिक देर तक पढने से नेत्रों में पीड़ा होती है, नेत्रों में पानी भर आता है, पढ़ते २ कभी लाइन छूट जाती है या कभी और लाइनों पर अचानक दृष्टि जा पड़ती है और चकाचौंध लगने लगती है। बार-बार नाटक बायस्कोप आदि खेल तमाशों को देखने के लिये रात्रि में जागना ठीक नहीं है। यदि कदाचित नाटक, बायस्कोप आदि में जाना हो तो जहां तक हो स्टेज से दूर और तिरछा होकर बैठे, उसके बिल्कुल सामने कभी न बैठे।

( ) मैले कुचेले रूमाल या कपड़े से अथवा मैले हाथों से आंखों को कभी नहीं मलना चाहिये।

(६) पढते समय किताब को बिल्कुल आंखों से लगाकर या बहुत दूर रख कर नहीं पढना चाहिये। ऐसा करने से आंखों पर बहुत जोर पड़ता है। अतएव किताब साधारणत: आंखों से बीस अँगुल दूर रखनी चाहिये। इस तरह एकाग्र-चित्त होकर आध घंटे तक पढ़ने से भी नेत्रों में थकावट नहीं मालूम होती और न नेत्रों में जल ही आता है।

( ) पढने अथवा लिखने के समय जड़ भरत के समान बिल्कुल जम कर न बैठे, बीच-बीच में थोड़ा२ आराम लेकर लिखने पढ़नेका काम करे।

( ) तेज धूप में बैठकर लिखना:पढना नहीं चाहिये और पढते समय सूर्यकी किरणें अथवा लेम्प की रोशनी आँखों के ऊपर नही पड़नी चाहिये।

(६) यदि दाहिनी आँख में कोई चीज गिर गई हो तो बाईं आंख में कुछ गिर जाने पर दाहिनी आंख को धीरे-धीरे मलना चाहिये और पलक को उलट कर साफ कपड़े के द्वारा अँगुली से उस चीज को कोने की तरफ धीरे-धीरे सरकाकर होशियारी के साथ निकाल देना चाहिये।

(१०) आंखों के दुखने पर या अन्य किसी प्रकार की पीड़ा होने पर किसी अनाड़ी चिकित्सक की अथवा पास पड़ोस के किसी आदमी की बताई हुई या विज्ञापनबाजों की "चक्षुरोगों की औषध" कभी भूल कर भी नहीं डालनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को वह स्मरण रखना चाहिये कि हीरे आदि रत्नों की अपेक्षा नेत्ररत्न अधिक मूल्य वान है। इसलिये जिस किसी व्यक्ति के कहने से अनाप सनाप कोई चीज आंखों में डालकर इस अमूल्य रत्न को नहीं खो बैठना चाहिए। अर्थात बिना सोचे समझे या किसी सुयोग्य चिकित्सक की सम्मति के बिना कभी कोई औषधि आंखों में नहीं डालनी चाहिये।

चश्मा कब लगाना चाहिए।

(१) जब तुम दिन में २० हाथ दूर के आदमी को एक बार देखकर नहीं पहचान सकते हो अथवा ऊँची दीवारों पर या दूकानों पर लगे हुए साइन-

बोर्डों को चलते हुए आसानी से नहीं पढ सकते हो या जब प्रकाश के सामने बारम्बार आँखें जाती हों और चकाचौंध लगती हो तब चश्मा लगाना चाहिए।

(२) जब किसी वस्तु को २-३ मिनट तक टकटकी बाँधकर देखने से आंखों में जल भर आता हो, नेत्र भारी होजाते हों और शिथिल पड़ जाते हों तो चश्मा लगाना ठीक है।

( ) जब आंखो के भीतर यो कोयों में मन्द२ पीड़ा हो अथवा सिर में दर्द रहता हो और उसका कोई कारण विदित न होता हो-और अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल, चन्दन, कपूर आदि देशी और अंग्रेजी औषधियों का व्यवहार करने पर भी कुछ लाभ न होता हो तो चश्मा लगाने की आवश्यकता है।

(४) स्कूलों या आफिसों में काम करते-करते जब कि आंखें थक कर डगमगाने लगें और मलने पर भी मिची जातीं हों तब उनको थोड़ी देर के लिए आराम देना चाहिये।

(५) जबकि खूब कड़ी धूप पड़ती हो, नेत्र उसको सहन नहीं कर सकते हों और माथे पर हाथ रखकर या कपड़ा डालकर चलना पड़ता हो तो चश्मा लगाने की जरूरत है।

(६ , जब किसी समय पढ़ते २ किताब के अक्षर बिल्कुल भ्रमात्मक मालूम हों अर्थात् सब लाइन लिपी हुई सी दीखें और लिखते समय अक्षर आपस में मिल जायँ तब चश्मा लगाना लाभ-दायक है।

(७) आंखों में परवल होने के कारण या स्वभाव से ही जो लोग हर वस्तु को बिल्कुल आंखों पर रख कर देखते हैं उनको अथवा जो बहुत बारीक सिलाई या पढ़ाई आदि का काम करते हैं और जिनको अधिक प्रकाश (बिजली आदि की रोशनी) में काम करना पड़ता है उनके लिये चश्मा लगाना हितकर है।

(८) जब आंखें किसी कारण से या बिना कारण ही लाल हो जायँ, उनमें जलन हो, दर्द हो, पानी निकलता हो, धुँधला २ दीखता हो, पलक और भौओं में कम्प हो और अँधेरा ही अच्छा मालूम होता हो तो चश्मा लगाना चाहिये।

उक्त कारणों में से यदि किसी स्त्री या पुरुष के कोई कारण विद्यमान हो तो उसको शीघ्र ही चश्मा लेने का प्रयत्न करना चाहिये। जैसे बिना कारण चश्मा लगाने से हानि होती है, वैसे ही कारणों के विद्यमान होने पर चश्मा न लगाने से भी नेत्रों को हानि होता है।

नेत्रों का स्वास्थ्य।

(१) नेत्रों की स्वस्थता पूर्णरूप से तभी रह सकता है जब कि शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो। इस लिए प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को चाहिये कि सदैव पौष्टिक पदार्थों का भोजन करे, नियम से परिश्रम, विश्राम और शयन करे, संयतेन्द्रिय होकर रहे, मल-मूत्रादि वेग को न रोके और उनके स्थानों को अच्छे प्रकार से साफ रक्खे। इन नियमों का पालन करने से नेत्र स्वस्थ रहते हैं नेत्रों में कोई विकार उत्पन्न होने पर शरीर में भी कोई न कोई गड़बड़ अवश्य होजाती है, इसलिये नेत्रोंको स्वस्थ रखने वाले मनुष्य को पहले शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिये। शरीर के आरोग्य, दीर्घजीवी और कर्मण्य रहने पर नेत्रों का स्वास्थ्य भी सुरक्षित रह सकेगा। जैसे बिल्कुल पडे रहने से वा कभी विश्राम न करने से शरीर कुछ दिनों में ही अस्वस्थ होजाता है, नेत्रों के सम्बन्ध में भी बिलकुल यही बात जाननी चाहिए। नियमानुसार खान-पान, स्नान, काम काज, विश्राम आदि करने पर भी नेत्रों की विकृति दूर न हो तो योग्य चिकित्सका करानी चाहिये।

(२) एक चौड़े मुँह वाली और कुछ गहरी बाल्टी, टप, नांद या और किसी बर्तन में ठण्डा पानी भरकर उसमें रोज सुबह के वक्त २०-५० बार नाक बन्द करके सारे मुँह को गोते लगावे और नेत्रों को खूब अच्छी तरह मलकर धोवे। इसको चक्षुस्नान कहते हैं। इसके सिवा नेत्रों में दुर्बलता और कोई सामान्य विकार हो तो एक बर्तन में पानी भरकर और सैंधे नमक की दो चार कंकड़ी डालकर उस पानी से नेत्रों को धोवे। इसके अतिरिक्त गङ्गा, यमुना आदि नदियों में सिर से स्नान नेत्रों के स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है।

(३) नेत्रों को शीतल और स्वस्थ रखने के लिए भोजन के साथ गायका घी या मक्खन बादाम का तेल अथवा आमले का तेल आदि शीतल और स्निग्ध चीजें खानी चाहिए तथा नारियल, बादाम, आमले, तिल तथा सरसों का तेल सिर पर और कनपटियों पर मलना चाहिये। इससे नेत्रों की ज्योति स्थिर रहती है, नेत्रों को और मस्तिष्क की थकावट दूर होती है।

(४) प्रायः कोष्ठबद्धता, परिपाक शक्ति की हीनता और स्निग्ध आहार का न मिलना इत्यादि कारणों से नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में अन्त्रधौतिक्रिया (Colanflu Shing) करने से बहुत लाभ होता है।

सिफलिस, गनोरिया आदि इन्द्रिय सम्बन्धी रोगों के कारण प्रायः (नेत्रों के पलकों में फुन्सियें निकल आती हैं, गेये पड़ जाते हैं, नेत्रों के पहले और दूसरे पर्दे में अथवा नेत्रों के डेलों में दाह होनी है, फोड़े निकल आते हैं, नेत्रों की नाड़ी और पेशियों में शिथिलता, अन्धता आदि) नाना प्रकार के यन्त्रणादायक और कृच्छसाध्य नेत्र रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में किसी सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा चिकित्सा कराने के साथ २ मूलकारण को भी विनाश करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस बातका चिकित्सक को भी विशेष ध्यान रखना चाहिये कि मूलकारण के नष्ट हुए बिना कारणान्तर का नाश नहीं होता।

(५) गैस, बिजली, मोटर आदि की तेज रोशनी नेत्रों के लिये बहुत ही हानिकर है। इनकी अपेक्षा सरसों का तेल, तिल का तेल या दुयें का तेल, नीम का तेल आदि देशी तेलों की रोशनी नेत्रों के लिये सबसे अच्छी होती है। मट्टी के तेल की रोशनी सफर में जाने आने या आंधी, मेह के समय अथवा नाटक आदि खेल तमाशों में अच्छा काम देती है, किन्तु पढ़ने लिखने का काम करने पर नेत्रों को हानि पहुंचाती है। आज कल प्रकाश और वर्ण की वैज्ञानिक ढङ्ग से परीक्षा करने वाले वैज्ञानिकों ने यह स्थिर किया है कि लाल और हल्दी के के समान पीले वर्णकी मिश्रित कान्ति के बीच की शक्ति का प्रकाश नेत्रों के लिए सबसे अधिक हितकर और स्वास्थ्यप्रद है।

(६) दो तीन रत्ती बोरिक एसिड को शुद्ध पानी में मिलाकर उससे अथवा त्रिफला या नीमके जल से रोज दो बार आँखों को धोवे या रुई के फोये को पानीमें भिगो २ कर पलकोंके ऊपर फिरावे इससे नेत्रों में से पानी निकलना, जाला, फूला, लाली आदि नेत्रों के छोटे २ विकार दूर होजाते हैं। गुलाब जल और शहद भी नेत्रों के उपद्रवों को शान्ति करने के लिये विशेष उपयोगी हैं।

(७) नेत्रों से अधिक काम लेने के बाद दो चार बार उन पर शुद्ध शीतल जल के छपके मार कर खूब धोना चाहिये। यदि नेत्रों में पीलापन हो तो देशी तेल के दीपक के ऊपर पारी हुइ स्याही दो बार आंखों मे डालनी चाहिये। यदि बालकों की आंखों में से दिन रात बिना किसी कारण के पानी निकलता हो तो ठण्डे पानी में गेरूको घिस कर उसका पलकों के ऊपर लेप करे। साधारणतः आंखों के दुखने पर त्रिफले के पानी से नेत्रों को

धोवे, गुलाबजल में गुलाबी फटकरी का बारीक चूर्ण मिलाकर उसकी ५-६ बूंदें दिन में तीन बार आंखों में डाले और रसौत, हरड़ फटकरी, हल्दी, दारु हल्दी अथवा लालचन्दन इनमेंसे किसी औषधि को या सबको एकत्र घिस कर पलकों पर लेप करने से शीघ्र आराम होता।

(८) यदि नेत्रों की ज्योति बढ़ानी हो और नेत्रों को तीक्ष्ण आकर्षण शक्ति से सम्पन्न करना हो तो प्रतिदिन निम्नलिखित नेत्ररक्षा सम्बन्धी व्यायामें करनी चाहिये प्रातःकाल सोकर उठते ही एक मेज या पलंगके ऊपर उत्तरकोमुंह करके चित्त लेट जाय, अथवा पैर फैला कर बैठ जाय, फिर दो तीन हाथ दूर पर आंखोंके सामने रक्खी हुई किसी छोटी चीज को दीवार पर लगे हुए पैसेकी बराबर काले दागको या और किसी वस्तु को टकटकी बांधकर पांच मिनिट तक देखे। इसी प्रकार सायंकाल के समय कोई गज भरके फासले पर एक मोमबत्ती जलाकर रक्खे और उसकी ओर ५ मिनिट तक निगाह बांधकर देखे। ऐसा करने पर पहले दिन तो एक दो मिनिट के बाद ही पलक झप जाते हैं, आँखें लपलपाने लगतीं हैं और पानी निकलने लगता है, किन्तु नित्य थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहने से कोई तीन महीने के भीतर आध घण्टे तक बिना पलक दृष्टि स्थिर रह सकती है और अधिक अभ्यास करने से इससे भी ज्यादा देर तक दृष्टिशक्ति बढ़ सकती है।

(९) जमीनपर चित्त लेटकर एक बार मकान की कड़ियों की ओर देखे फिर बिना मुँह फेरे ही एक बार दाहिनी ओर और एक बार बाईं ओरको खूब जोर से घूरे, इस तरह ३० सेकेण्ड तक करे। फिर घर के ऊपर नीचेके कोनाकी ओर चारों तरफ को टकटकी बांधकर देखे। इसके बाद नेत्रों को कुछ देर तक खोले, मींचे और चारों ओर को जल्दी २ दृष्टि दौड़ाता हुआ देखे। यह क्रिया दिनमें एक बार चार पांच मिनिट तक रोज करनी चाहिये। इसके सिवा हाथ के अँगूठे या अँगुली से धीरे २ नेत्रोंके पलकों को सहलाना चाहिये। —'वैद्य'

समय का दुरुपयोग।

(श्री सेठ अमरचन्दजी नाहटा)

जीवन बड़ा अमूल्य है, उसका निर्माण समयके छोटे छोटे क्षणों-परमाणुओं के द्वारा होता है। जो जीवन का सदुपयोग करना चाहते हैं उन्हें समय के इन छोटे छोटे परमाणुओं क्षणों का सदुपयोग करने के लिए सावधान रहना चाहिये। हर एक क्षण के साथ जीवन की अमूल्य सम्पत्ति कम होनी चली जारही है, यह सोचकर समय के स्वल्प काल का उचित उपयोग होना चाहिये।

शरीर यात्रा के साधारण कार्यों के अतिरिक्त हमारा कुछ समय नित्य नियमित रूप से परमार्थ के कामों में भी लगाना चाहिये। आध्यात्मिक साधना एवं लोक सेवा के लिये भी प्रतिदिन कुछ समय नियत रखना आवश्यक है। "परमार्थिक कार्यों के लिये समय नहीं मिलता" यह कथन बहाने बाजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मनुष्य की इच्छा जिस ओर होती है, उस दिशा में कार्य करने के लिये समय निकल ही आता है। यदि दिन भर में २० काम करने में हों और उनमें से यदि पांच पांच मिनट बचा लिये-उन कामों को थोड़ा जल्दी कर लिया जाय तो काफी समय बच सकता है और उसका उपयोग परमार्थ के कार्यों में किया जा सकता है।

आम तौर से लोगों का अधिकांश समय व्यर्थ की गपशप, आलस्य, प्रमाद, फैशन परस्ती, आदि में खर्च होजाता है। कोई नियत कार्यक्रम, एवं दिनचर्या की व्यवस्थित प्रणाली न होने के कारण भी समय का बहुत भाग निरर्थक नष्ट होता रहता है, यदि उसे बचा लिया जाय और फिर किन्हीं सत्कर्मों में लगाया जाय तो जीवन का महत्वपूर्ण सदुपयोग हो सकता है।

दैनिक जीवन के अनुभव—

कभी न फलने फूलने वाले पेशे

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

—※—

जब आप अपनी जीविका का प्रश्न हल करने के लिए, अपने लिये एक पेशे का चुनाव करने निकलें,तो आपको कई आवश्यक तत्त्व स्मरण रखने होंगे। आप जिस पेशे का चुनाव करने जा रहे हैं, उसका समाज में कैसा आदर है? दूसरे लोगों की उसके प्रति क्या, कैसी भावना है? वे उसे उत्तम समझते हैं या निकृष्ट? हर पेशे का समाज में कुछ विशिष्ट स्थान है। जन साधारण ने उसके विषय में एक निश्चित धारणा बना रक्खी है।

हमारा अनुभव है कि वे पेशे अधिक नहीं फलते फूलते जिनमें हमें दूसरे का हृदय दुखाना पड़ता है दूसरे के साथ अनीति, निर्दयता, एवं अमानुषिकता का व्यवहार करना पड़ता है, या सीनाजोरी से दूसरे के अन्तःकरण में प्रहार होता है। मुई खाल की श्वास से लोह भस्म होता है, फिर, जीवित प्राणी के दुःखी हृदय से निकली हुई सिसक, रोदन, हाहाकार से क्या कुछ नहीं हो सकता?

हमारे एक मित्र जेलर हैं—ब्राह्मण, प्रतिष्ठित, सुयोग्य एवं अनुभवी गत पन्द्रह वर्ष से जेल के अध्यक्ष हैं। कैदी उनके नाम मात्र से काँपते हैं। आवाज सुनते ही सहम उठते हैं। सब पर आतंक छाया रहता है। समाज में सफल गिने जाते हैं किन्तु गृहस्थ जीवन कदाचित् सब से दुखी हैं। यौवन में ही चार पुत्रियों को छोडकर धर्मपत्नि बिदा हुई। पुत्र की सदैव कामना अतृप्त ही रही। स्वयं बीमार रहते चले आ रहे हैं। आये दिन कुछ न कुछ विपता चलती रहती है। बड़े भ्राताजी का देहान्त होने से सम्पूर्ण कार्य भार उनकी भी गृहस्थी का बोझ सर पर आन पड़ा है। एक विवाहिता पुत्री का स्वर्गवास हो गया है और स्वयं बहुत बीमार हैं। दुःखका कारण कैदियों की मूक आहें हैं। उनका कोसना, कलपना, गालियां देना अशुभ वाणी का उच्चारण—इन सभी बातों का अदृश्य प्रभाव हमारे इन मित्र पर अलक्षित रूप से पड़ता रहा है।

हमारे एक मित्र पुलिस में थानेदार हैं। थानेदार साहब काफी मालदार हैं किन्तु अभी हाल ही में उनकी युवती पत्नि दो पुत्र, तीन पुत्रियों को छोड़ कर आनन फानन चल बसीं। घर में कोई न रहा तो बड़े पुत्र का विवाह किया। विवाह कराने गये कि विवाह से आठ दिन पूर्व माता का स्वर्गवास हो गया। पुत्र का विवाह बुरी तरह सम्पन्न हुआ। अब उन्हें सब कुछ सूना सूना प्रतीत होता है।

इसी प्रकार से अनेक उदाहरण हम दे सकते हैं जिनमे कभी भी सुख न मिला। पुलिस की ज्यादती, कठोर, यन्त्रणाऐं, सजाऐं, छीना-झपटी, लूट खसोट सब कोई जानता है। पुलिस के सिपाहियों को हर कोई कोसता है। इसी प्रकार डाक्टर को देखना अशुभ समझा जाता है। वकील, दलाल, वैश्या—इनके पेशे झूठ, स्वार्थ, छल, कपट, बेईमानी पर अवलम्बित हैं। पगपग पर इन्हें आत्म स्वतन्त्रता, अन्तरात्मा की निष्ठा, सत्यता का हनन करना पड़ता है। अतः कोई भी फलता फूलता नहीं दीखता।

इनके विपरीत उन पेशों को लीजिये जिनके साथ संसार की सद् भावनाएँ हैं। अध्यापक, पुजारी, पादरी, लेखक, सम्पादक,प्रकाशक—ये ऐसे पेशे हैं, जिनसे समाज की भावनाओं को, उनके स्वत्व को हानि नहीं पहुँचती समाज इन्हें जनता का हितैषी समझता है। प्रत्येक का आशीर्वाद इन पेशे वालों के साथ होता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय नेता,

समाज सुधारक, प्याऊ पर जल पिलाने वाला, कृषक, मजदूर, सद् गृहस्थ से ग्राम पड़ौस, जन समुदाय की भलाई होती है। प्रत्येक इन्हें हृदय से प्यार करता और शुभ कामनाएँ प्रदान करता है। सद्भावनाओं के प्रताप से ये फलते फूलते हैं। कम आय में भी काफी बरकत रहती है।

दूसरों की उत्तम या अशुभ बातों का प्रभाव सदैव पड़ता है। यह तत्त्व कभी न भूलिये। जिन जिन पेशों में दूसरे का मन दुखाया जायगा, दूसरों की आहें पड़ेंगीं, वे ही स्वार्थी पेशे वाले रोते चिल्लाते अतृप्त दिखाई पड़ेंगे। ऐसे दूकानदार जो कूड़ाकरकट मिलाकर चीजें बेचते हैं, या कम तोलते हैं, सदैव घाटे में ही रहते हैं। न्याय, ईमानदारी, प्रम तथा पसीने की सच्ची कमाई ही फलती है। सूदखोर बनिये, काबुली, या कसाई आजतक कभी आनन्दित नहीं हुए हैं। ईर्षा, जलन, स्वार्थ, बेईमानी, खुदगर्जी जितनी ही किसी पेशे में घुसती है, उतनी ही अशान्ति रहती है। मैंने स्वयं देखा है कि हरे वृक्ष काटने वाले, कसाई को गाय बकरे, मुर्गी, अण्डे, कबूतर बेचने वाले, मछली माँस के व्यापारी, झूँठ बोल २ कर घर भरने वाले कभी फले फूले नहीं हैं। वे पति जो पत्नि पर अत्याचार करते हैं। वे आफीसर जो माहततों पर गुर्राते हैं, वे कर्मचारी जो सहयोगियों पर दुर्व्यहार करते हैं कभी सुखी नहीं दीखते। कृषकों पर निर्दयता करने वाले जमींदारों के घर मैंने ईंट ईंट होते देखे हैं। विचार कर देखो कि तुम्हारा व्यवसाय किसी का जी तो नहीं दुखाता। स्मरण रखो, सात्विक जीविका कमाने वाले ही फूलते फलते और सुखी रहते हैं।

सूचना—जादू के समान आश्चर्यजनक असर करने वाली 'ओज वर्धक रसायन और गर्भ रसायन दोनों बनकर तैयार हो गई हैं। पाठकों को बिलकुल मुफ्त मिलेंगी हर रसायन के भेजने का खर्च ।≈) है। जो मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

—मेनेजर "अखण्ड-ज्योति"

न्यायकारी परमेश्वर।

(श्री कन्हैयालालजी पाण्डेय, उदयपुर)

ईश्वर की प्रार्थना करने वालों को हम किन्हीं वस्तुओं की याचना करते हुए सुनते हैं। जिन्हें जिस वस्तु का अभाव है वे उस वस्तु की याचना करते हैं। इस याचना के समय वे इस बातको सर्वथा भूल जाते हैं कि ईश्वर निष्पक्ष न्यायकारी एवं समदर्शी है।

आलसी मनुष्य जुए या सट्टे के लिये मनौती मनाते हैं, चोर और डाकू अमुक भेंट चढ़ाने की शर्त पर ईश्वरीय सहायता चाहते हैं, निरुद्यमी विद्यार्थी कुछ भोग प्रसाद चढ़ाकर अपना काम बना लेना चाहते हैं, जिसे देखिये वह ईश्वर की गिरह काटने की फिक्र में है उसे उल्लू बना अपना काम बना लेना चाहता है। खुशामद भरी चिकनी चुपडी स्तुतियां कर या चन्द पैसों का भोगप्रसाद देकर लोग ईश्वर को भुलावे में डालना चाहते हैं कि वह उनकी इच्छाओं को झटपट पूरा करदे।

इस तरह की आशा रखने वाले व्यक्ति नादान हैं। उन्हें जानना चाहिये कि परमात्मा निष्पक्ष, न्यायकारी एवं समदर्शी है। वह किसी की खुशामद स्तुति या घूँसकी परवा न करके निष्पक्ष न्याय करता है। कर्म का यथावत् फल देना उसका काम है सो वह अवश्य ही देता है। निरुद्यमी को दरिद्रता, परिश्रमी को समृद्धि, धर्मात्मा को आनन्द और पापी को दण्ड देने में वह कभी किसी की रू रियायत नहीं करता।

परमात्मा की सच्ची प्रार्थना, उसके नियमों पर चलना है। जो उद्योगी और धर्मात्मा हैं उन्हें ही ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है।

विवाह और उसकी सफलता

(प्रो० इन्द्रसेनजी एम० ए० पी० एच० डी०)

एक बार लन्दन के एक बड़े होटल में इंगलैंड के तीन महान् विचारक उपस्थित थे। उसी अवसर पर भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध लेखक तथा विचारक भी निमन्त्रित थे। बातों ही बातों में एक बार प्रसंग चल पड़ा–विवाह और उसकी सफलता। एक ने यह भी कहा कि हर कोई अपने अपने व्यक्तिगत अनुभव बताये। एक ने कहा–"मेरी स्त्री के बीच हमारे विवाहित जीवन में ३-४ बार बड़ी गम्भीर परिस्थितियां उत्पन्न हो गई थीं। बस इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहना चाहता।" दूसरे ने कहा–"मेरा मेरी स्त्री से वचन हो रहा है कि मैं उसके जीवन-काल पर्यन्त अपने विवाहिक सम्बन्ध में कुछ न कहूंगा।" तीसरे ने भी कुछ इसी प्रकार का क्षोभजनक उत्तर दिया। जब तीनों अंग्रेज विचारक कह चुके तो अपने भारतीय अतिथि को सम्बोधित करके बोले–"अच्छा भाई अब तुम भी बतलाओ आप लोग अपने विवाहों को कैसे सफल बनाते हो?"

भारतीय विचारक ने कहा, "हमारे यहां वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में स्त्री-पुरुष की मौलिक धारणा आपके यहां से सर्वथा भिन्न होती है। हमारे यहां स्त्री पुरुष अपने अपने अधिकारों की भावना को लेकर विवाह में प्रविष्ट नहीं होते, बल्कि कर्तव्य की भावना को लेकर। यह भारत की परम्परा का सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण है वर्तमान समय में अधिकार भावना वहाँ भी बढ़ रही है और उसके दुष्परिणाम वहां भी देखने में आ रहे हैं।"

इस उत्तर ने उन अंग्रेज विचारकों को चकित कर दिया। उन्होंने इस भारतीय उच्च आदर्श की भूरिभूरि प्रशंसा की।

आत्मिक स्वतन्त्रता।

(श्री रामचन्द्रजी त्रिवेदी, उदयपुर)

आज सब ओर से राजनैतिक स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द हो रही है। किन्तु हम देखते हैं कि बाह्य स्वतन्त्रता ही पर्याप्त नहीं है। स्वतन्त्रता का दावा करने वाले देशों को क्या हम पूरा पक्का स्वतन्त्र कह सकेंगे? आज तो दुनियां का कोई भी राष्ट्र सब अर्थोंमें स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। बालक पर प्रौढ़ की प्रभुता है, युवा ग़लत विचारों और ग़लत रास्ते ले जाने वाले नेताओं का गुलाम है, बुड्ढे अन्ध विश्वासों और दाकियानूसी विचारों से जकड़ा हुआ है। हमारी आत्मा बंधन में है। हमारी बुद्धि विकार ग्रस्त है, हमारा हृदय तमसाच्छन्न है। हम आज अपने आप पर से विश्वास खो बैठे हैं और हर दम भयाक्रान्त रहते हैं चिन्ताऐं हमें घेरे हुए हैं और स्वार्थ हमें जकड़े हुए हैं। हम इन्द्रियों के क्रीतदास हैं। हम अपने आप पर काबू नहीं कर पाये हैं। हम आन्तरिक दृष्टि से गुलाम हैं और यह केवल हिन्दुस्तान की बात नहीं–स्वतन्त्र कहे जाने वाले सभी देशों की बात है। इसलिये केवल स्वराज्य—बाह्यशासनसे मुक्ति ही पर्याप्त नहीं है। बाह्य स्वतन्त्रता तो, आन्तरिक स्वतन्त्रता, आत्मिक स्वतन्त्रता का प्रवेश द्वार है। जब तक पृथ्वीतलपर प्रत्येक व्यक्ति यह आन्तरिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक मानव का भविष्य रक्त से लोहित और अश्रु से सिंचित होता रहेगा। आन्तरिक स्वतन्त्रता से मतलब है–अपने आप पर काबू, शरीर और मन पर अपना शासन जब मनुष्य सम्पूर्ण सृष्टि को बदल सकता है तो वह अपने आपको भी बदल सकता है। गीता कहती है मनुष्य ईश्वर हो सकता है, वही ईश्वर है। जीवनको पराधीन और पंगु बनाने वाली सारी दुर्बलताओं पर विजयकर पालेना—यही आत्मिक स्वतन्त्रता है। यही हमारा ध्येय है।

वासनाओं का त्याग ही सच्चा 'त्याग' है।

आत्म-त्याग का सच्चा मतलब समझे बिना लोग उसके बदले में कई अन्य क्रियाओं का आचरण करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यहां तक कि कई लोगों ने तो उसका मतलब आत्मघात तक समझ रक्खा है। कितनों का विश्वास है कि बाह्य वस्तुओं—धन, कुटुम्ब, ऐश्वर्य और घर बार को छोड़कर जंगल में जा बैठना ही आत्मत्याग है। कितने नाना प्रकार की यातनाओं द्वारा शरीर को कष्ट देकर सुखा डालने को आत्मत्याग समझते हैं। कितने लौकिक यश की इच्छा से प्रेरित होकर अपने धन और प्राणों को समाज और देश के नाम पर न्यौछावर कर देने को आत्मत्याग मानते हैं। कहां तक कहें, दुनियां में जितने उत्तम कार्य हैं वे सब आत्म-त्याग के स्वरूप ही समझते जाते हैं।

आत्म-त्यागका सच्चा स्वरूप उपर्युक्त सब दृष्टांतों से भिन्न और विलक्षण हैं। आत्म-त्याग स्वार्थ-त्याग का ही दूसरा नाम है। और स्वार्थ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हृदय से बाहर फेंकी जा सकें। वह तो मनकी एक अवस्था विशेष है जिसको दूसरे रूप में बदलने की आवश्यकता है। आत्म-त्याग का मतलब आत्मा का नष्ट करना नहीं, परन्तु वासनाओं और इच्छाओं से लिप्त आत्मा का त्याग है। स्वार्थ का ठीक अर्थ क्षणस्थायी सुखों में फंसकर सदाचरण और विवेक को भूलना है। स्वार्थ हृदय की उस वासनामय और लोभ-पूर्ण अवस्था का नाम है जिसका त्याग किये बिना सत्य का उदय नहीं हो सकता और न शान्ति और सुखका ही हृदय में संचार हो सकता है।

केवल वस्तुओं का त्याग ही सच्चा स्वार्थ त्याग नहीं कहला सकता, किन्तु वस्तुओं की इच्छा का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है। मनुष्य अपने धन, कुटुम्ब, परिवार और घर को छोड़कर भले ही संन्यासी बन जाय, परन्तु जब तक मानसिक वासनाओं और इच्छाओं का दमन न किया जाय तब तक सारी बाह्य क्रियायें केवल ढोंग मात्र हैं। सब लोगों को विदित है कि महात्मा बुद्ध संसार को त्यागकर जंगल में भी आ बैठे, परन्तु छः वर्ष तक उनके हृदय में ज्ञान का उदय न हो सका, क्योंकि वे इतने दिन तक अपने मनको वश में न कर सके थे। ज्योंही उनका हृदय शुद्ध हुआ त्योंही एक दम उनके ज्ञान नेत्र खुल गये और चराचर जगत उन्हें प्रत्यक्ष होगया।

यदि चित्त को वश में किये बिना कोई मनुष्य वस्तुओं का परित्याग कर दे तो उसे शान्ति के बदले क्षोभ और दुःख प्राप्त होगा। यही कारण है सैकड़ों नवयुवक साधु अपने वेश के प्रतिकूल आचरण करने लगते है। केवल मान बड़ाई अथवा यशः प्राप्ति के लिए छोड़ा हुआ संसार थोड़े ही समय में उनके हृदय पर ऐसा आकर्षण करता है कि वे बेचारे अपने आवेगोंको सहने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि बाह्य वस्तुओं की ममता नहीं घटी है तो उनका परित्याग करना ही मूर्खता है। मानसिक शांति को नष्ट करने वाले बाह्य पदार्थ नहीं हैं। अपने हृदय में इन पदार्थों के प्रति जो इच्छा उत्पन्न होती है,वही सुख और शान्ति को चुराने वाली है।

सात्विक सहायताएं।

१) श्री चुन्नीलाल गोपीनाथ सिन्दी।
२) श्री जानकीप्रसाद करन, औरंगाबाद।
३) श्री सत्यप्रकाश बंसल, हापुड़।
७।=) श्री ठा० महिपाल सिंहजी निमदीपुर।
१०) श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ बी० ए०, दिल्ली।
२) श्री एम० एम० बाँगरे, सेलू।

ब्रह्मचर्य-वन्दना

ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शास्त्री।

(१)

ओ तेजपुञ्ज ! ओ दिव्यरूप !
ओ शक्ति-सुधा के अनुपम स्रोत।
ओ सौन्दर्य निराले सुखमय !
ओ जागृत जीवन की ज्योत !
ओ अनन्त के परिचायक ! ओ-
अमर-भावनाओं के मूल !
ओ अद्भुत ! ओ भव्य, सुगन्धित-
ओ मानुष उपवन के फूल !
देह-भवन के उज्वल दीपक,
फणि की मणि वैदूर्य ललाम !
जग में केवल सार रूप ओ-
ब्रह्मचर्य है तुझे प्रणाम ॥

(२)

जिस तनु में आवास करे तू
होवे वह सुख से भरपूर।
रोग, शोक, चिन्ता, भय, जड़ता
ये सब उससे रहते दूर।
उद्यम, साहस, क्रिया शक्ति औ-
पटुता का उस में भण्डार।
भरा रहे नित, कभी न होवे,
उसकी जीवन रण में हार।
प्रबल निराशा औ उद्वेगों-
का है यह भीषण संग्राम।
इस में तू आधार रूप ओ,
ब्रह्मचर्य है तुझे प्रणाम।

(३)

जिसने तुझे न जाना अथवा
किया नहीं तेरा सम्मान।
किं वा जान बूझ कर भी जो,
तुझ से वञ्चित रहा अजान ॥
उसने जग में आकर के भी,
पाकर सब वैभव पर्याप्त।
पाया कुछ भी नहीं वृथा ही,
जीवन लीला करी समाप्त ॥
तेरे बिना विभव सब फीके,
सकल साधनायें हैं बाम।
साधन मुख्य जगत में तू ओ,
ब्रह्मचर्य है तुझे प्रणाम ॥

(४)

इन्द्रिय संयम द्वारा जिसने,
तेरा सेवन किया यथार्थ।
सुगम रीति से साध सका वह,
अपना स्वार्थ और परमार्थ ॥
तुझ अमूल्य निधिको सञ्चित कर,
जिसने निज भण्डार भरा।
उसका जीवन पुष्प निरन्तर,
नित नूतन है हरा भरा ॥
तू है अक्षय कोष सुखों का,
ऋद्धि सिद्धियों का तू धाम।
तेरी समता नहीं कहीं ओ,
ब्रह्मचर्य है तुझे प्रणाम ॥